



प्रागैतिहासिक सामाजिक तथा आर्थिक परिवेश का एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० पूनम पाठक

सारांश, पूर्व तथा मध्य पाषाणकाल में लोग वृहदाकार परिवारों में रहा करते थे तथा आखेट एवं खाद्य-संग्रह द्वारा अपना उदरपोषण करते थे। उत्तर पाषाणकाल से अपेक्षाकृत बड़ी आयुध निर्माण परक बस्तियों तथा विविध कार्यकलापों के अंकन से युक्त चित्रों वाले शैल छाजनों का मिलना प्रारंभ होता है। इनसे सामाजिक सम्बन्धों का विस्तारण परिलक्षित होता है। प्रथम स्थायी रूप से बनी कृषक बस्तियों से इस दिशा में अधिक विकास संकेतित होता है। इनमें निश्चय ही प्रारम्भिक सरल समाज, की तुला में अधिक सामाजिक अनुशासन एवं संरूपता की अपेक्षा थी। धीरे-धीरे इन बस्तियों का आकार तथा इनके कार्यकलापों के आयाम बढ़ते गए जिस प्रक्रिया में अन्ततः सैन्धव सभ्यता का परिणमन हुआ होगा। पूर्व तथा मध्य पाषाणकाल के प्रस्तर उपकरण प्रमुख नदियों की तलहटियों से मिले हैं, और इस अवधि में स्थायी बस्तियों का सर्वथा अभाव है। स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज विचारणीय था और सामान्य रूप से लोग नदियों के किनारे रहा करते थे। मध्य पाषाणकालीन कुछ स्थानों पर उपकरणों की विशदता जनसंख्या की वृद्धि तथा स्थानीय परम्परा का लम्बी अवधि तक नैरन्त संकेतित करती है।

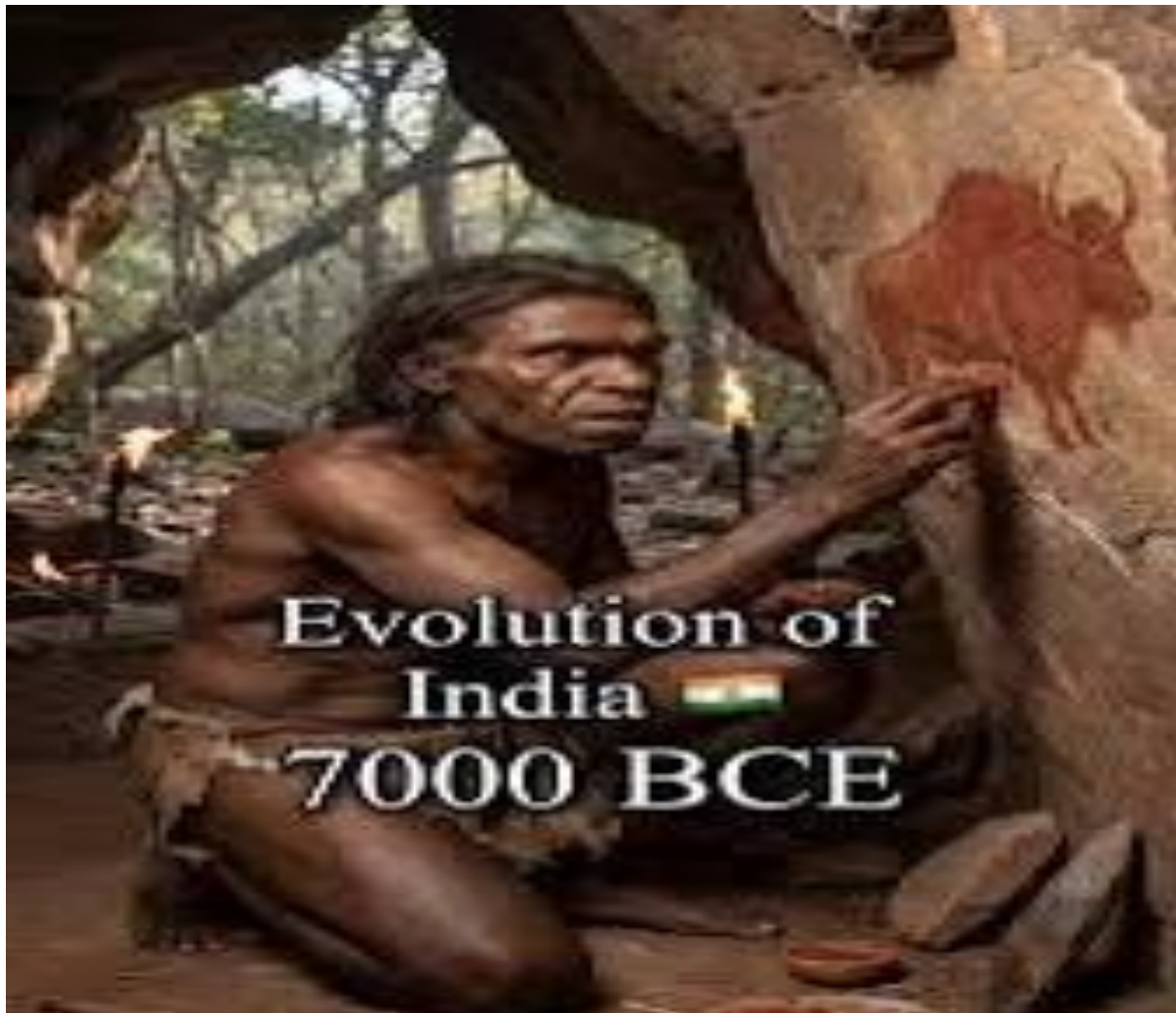
मुख्य शब्द, भानपुर, पाषाणकाल, नवपाषाणकाल, ताम्रामकाल आदि।

परिचय, उत्तर पाषाणकाल में रहने के लिए शैल छाजनों का प्रयोग भी दिखाई पड़ने लगता है घोर साथ ही उपकरणों को विशुद्धता एवं विविधता ने भी वृद्धि मिलती है। जहां उपकरणों को बनाया जाता था वहां पर सम्भवतः झोपड़ियां खड़ी की जाती थी, जैसा कि बीर भानपुर के उत्खनन में देखे गए यष्टि-छिद्रों (पोस्ट-होल्स) से अनुमानित होता है। किसी अवस्था में, जल तथा आखेट अथवा कृषि कर्म योग्य भूमि से निकटता बस्ती के स्थापित होने का मुख्य प्राधार होता होगा।



पाषाणकाल का मानव का रहन सहन

नवपाषाणकाल तथा ताम्रामकाल में पशुपालन तथा कृषि कर्म से संबद्ध सुविधाएं बस्तियों के चयन में आधार-भूमि रही होगी। इन सुविधाओं में मनुष्यों तथा पशुओं के लिए पेयजल से निकटता तथा पुनः कृषि के लिए उपयुक्त भूमि का निकट होना प्रमुख था। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं बलूचिस्तान में किली गुल मुहम्मद तथा राना बुण्डइ बादि स्थानों में ऐसी बस्तियों के अवशेष मिले हैं। यह कह सकना कठिन है कि ये स्वयं अन्नोत्पादन करते थे अथवा नहीं, किन्तु इन सभी स्थानों पर सातत्य पूर्ण मानव बस्तियों की प्राप्ति से यह स्पष्ट है कि तत्कालीन मनुष्यों की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में ये स्थान सर्वथा उपयुक्त थे। सिंध के मैदानों में पाई गई बस्तियों के सन्दर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। यहां कृषि कर्म द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन की सम्भावनाएं निहित थीं जिस कारण या तो नदियों के किनारे पर अथवा निकट ही किती ऊँचे स्थान पर लोगों ने अपना निवास बनाया। सम्भवतः नदियों में आने वाली बाढ़ से सुरक्षा हेतु लोगों ने बड़ी-बड़ी दीवारों पर निर्माण करना भी सीखा जैसा कि कोटदिजी तथा कालीबंगा में दिखाई पड़ता है। बस्तियों के बाहर दीवाल खेड़ी करने की यह परम्परा संधव संस्कृति में भी प्रविष्ट होती मिलती है। किली गुल मुहम्मद से प्राप्त प्राचीनतम घर संवेष्टित मिट्टी से बने हुए हैं। गृह-निर्माण के सम्बन्ध में मुण्डीगांक से अधिक स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होता है। यहां प्राचीनतम गृह कच्ची मिट्टी की दीवारों से बनाए गए हैं जिनमें छोटे-छोटे आयताकार कमरे होते थे। इसके बाद की अवस्था में कमरों का आकार बढ़ जाता है तथा धूप में सुखाई गई ईंटों का प्रयोग होने लगता है।





गृह के आकार तथा कमरों की संख्या में धीरे-धीरे और भी वृद्धि होती जाती है। भोजन के लिए चूल्हों का प्रयोग प्रारम्भ से ही मिलता है, और घर के अन्दर कुएँ भी प्राप्त होते हैं। अंजिरा में, घर की दीवारों में मिट्टी के साथ मिले हुए पत्थर का प्रयोग मिलता है। सिध के मैदान में, गृह निर्माण तथा बाहरी दीवाल दोनों में धूप में सुखाई गई ईंटों और पत्थर का प्रयोग मिलता है। कालीबंगा में, हरप्पा पूर्व स्तर में ही ईंटों के आकार का मानकीकरण सम्पन्न हुआ दिखाई पड़ता है किन्तु बस्ती की योजना के विषय में प्रामाणिक ढंग से कुछ कह सकना कठिन है। जहां तक पाषाणकालीन मनुष्य की सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं का प्रश्न है, पूर्व पाषाण तथा मध्य पाषाण के विषय में कुछ भी निश्चितता के साथ नहीं कहा जा सकता। किन्तु उत्तर पाषाणकाल के सन्दर्भ में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर पुरातत्त्ववेत्ताओं ने अनुमान प्रस्तुत किए हैं।

वर्तमान काल में विविध साचेटक कबीलों में अथवा इन प्राचीन बस्तियों के निकट रहने वाले स्थानीय लोगों में प्रचलित लोकधर्म तथा लोकमान्यताएं इन अनुमानों पर पहुंचने में प्रायः सहायक हो सकती हैं। मध्य भारत में, लेखनिया की मानव निवसित गुफाओं में मृतकों के गार्ड जाने के अवशेष प्राप्त हुए हैं। मद्रास के निकट स्थित गुडियन गुफा में एक स्थानीय देवी का मन्दिर है और उत्खननों से वहां प्राचीन काल में मनुष्यों का आवास होना प्रदर्शित होता है। ऐसे कई इष्टान्त मिलते हैं जिसमें पाषाणकालीन उपकरण—निर्माण—स्थलों पर आधुनिक स्थानीय मनुष्यों के पूजास्थल प्राप्त होते हैं। आज भी पूरे भारतवर्ष में अगणित स्थानीय देवी देवताओं की पूजा होती है। इनमेंसे कुछ तो विकसित हिन्दू धर्म के देवसमूह के विभिन्न देवी-देवताओं से तद्रूप हैं, किन्तु कुछ की अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनी हुई है। यह अनुमान अस्वाभाविक नहीं

जान पड़ता कि इनमें से अधिकांश नवपाषाण तथा ताम्रामीय काल में ही उद्भूत हो गए होंगे और उनकी निरन्तरता अब भी बनी हुई है। पशुपालन तथा कृषि विषयक ज्ञान के साथ उर्वराशक्ति से सम्बन्धित अनुष्ठान-पूजा का प्रारम्भ लगभग सम्पूर्ण विश्व में दिखाई पड़ता है। इसके साथ यह विश्वास जुड़ा हुआ था कि इन अनुष्ठानों में निहित जादुई शक्ति से उर्वराशक्ति में तथा उत्पादन में वृद्धि होती है। भारतवर्ष में भी पाषाणकालीन समाजों के सन्दर्भ में इस प्रकार की परिकल्पना की जा सकती है। लोकधर्म के स्तर पर आज भी विभिन्न आनन्दोत्सव ऋतु-परिवर्तन, फसल की कटाई-बुवाई इत्यादि के साथ घनिष्टरूप से सम्बन्धित दिखाई पड़ते हैं और इनकी प्राचीनता बहुत पीछे इस काल तक ले जाई जा सकती है। इन विकासों ने धार्मिक विश्वास के क्षेत्र में विविध नवीन धारणाओं का अनुप्रवेश किया होगा, यह अनुमान किया जा सकता है इस काल में मृतकों के शवाधान के विविध प्रकार प्राप्त होते हैं।



पाषाणकालीन मानव का विकास

गुजरात में, मेहसाना जिला में स्थित संघनाज नामक स्थान से प्राप्त लगभग 4000-3000 ई०पू० का मध्यपाषाणकालीन साक्ष्य अत्यन्त सरल प्रकार का प्रवाधान है जिसमें मृतक के साथ कोई वस्तु नहीं रखी गई है। 3000 ई० पू० की बलूचिस्तान की ग्रामीण संस्कृतियों को सामान्यतः दो वर्षों में रखा जा सकता है उत्तरी बलूचिस्तान में मृतक का दाह संस्कार करने की प्रथा थी। दाह के पश्चात अवशिष्ट हड्डियों और भस्म को बड़े अथवा छोटे पात्र में एकत्रित कर पात्र को घर

की कर्श के नीचे अथवा घर के निकट गाड़ दिया जाता था। दक्षिण में (इसमें में ही अपवाद है जहां उत्तरी विधि की प्रवधियां मिलती हैं) मृतक को पक्षियों तथा जंगली पणुधों के खाने के लिए खुला छोड़ देने की प्रथा थी। तत्पश्चात् बची हड्डियों को पात्रों में एकत्रित कर बस्ती के निकट स्थित श्मशान में गाड़ दिया जाता था। कश्मीर की नव पाषाणकालीन बस्ती बुरझाम में शवों को घरों के अन्दर ही दफनाने का प्रचलन था और कुछ इष्टान्तों में मृतक के शरीर पर गैरु छिड़का हुआ मिलता है। शव के साथ कोई अन्य वस्तु सामग्री दफनाई हुई नहीं मिलती।

प्रथम सहस्राब्दी ई०पू० के प्रारम्भिक कालो की पश्चिमी भारत, मध्यभारत तथा दक्कन की नवपाषाण ताम्रामकालीन संस्कृतियों में मृतक शरीर को सम्पूर्णतः दफना देने तथा शव को पशु-पक्षियों के लिए खुला छोड़ देने दोनों ही प्रथा प्रचलित थी। विन्ध्य के दक्षिणी क्षेत्र से प्रथम सहस्राब्दी ई० पू० के परवर्तों काल से संबद्ध बहुसंख्यक मृतक स्मारक मिले हैं जिन्हें मेगालिथ कहा जाता है। अधिकांश दृष्टान्तों में इन मृतक स्मारकों में एकाधिक मनुष्यों के अवशेष और उनके साथ रखी गई विविध वस्तुएं मिलती हैं। इन स्मारकों के आकार, विस्तार आदि में बहुत वैविध्य मिलता है और इनके लिए प्रयुक्त कोई भी विवरण ऐसा नहीं हो सकता जो समान रूप से सभी पर व्यवहृत हो सके।

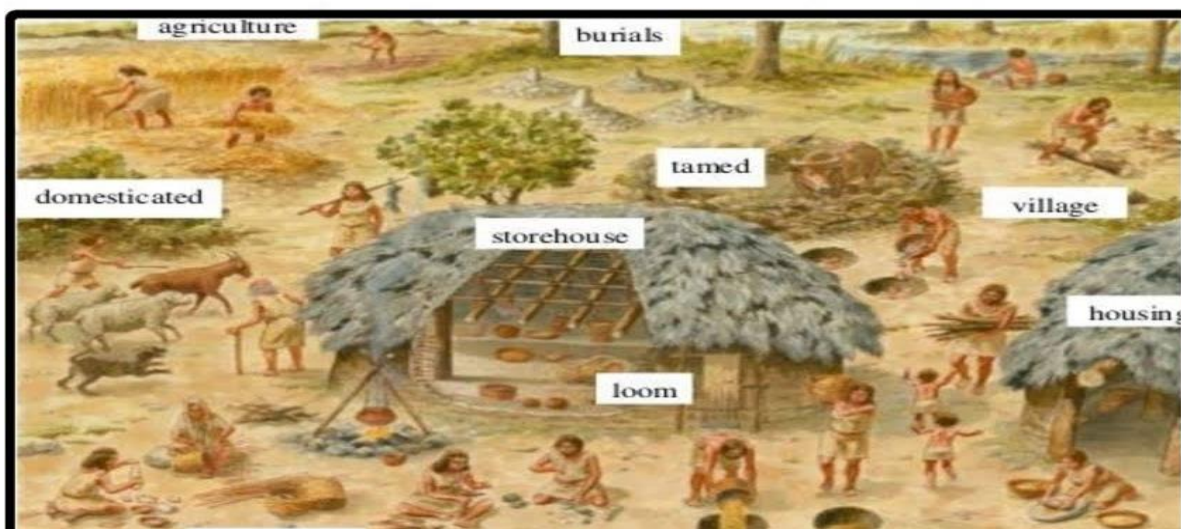
पूर्व पाषाणकालीन मनुष्य की सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं के समान ही, उसकी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में भी केवल अनुमान किया जा सकता है। इस समय अर्थव्यवस्था का स्वरूप आलेट तथा खाद्यसंग्रह तक ही सीमित रहा होगा भविष्य की पूर्वचिन्ता तथा उसके लिए कुछ उपाय करने की चेष्टा सम्भवतः अनस्तित्वमान थी। मध्य पाषाणकाल के क्षुद्राश्रमों में अधिक विकसित मस्तिष्क तथा आयुधों के निर्माण में उनके उपयोगपरक पूर्वचिन्तन का तत्त्व दिखाई पड़ता है। इसमें सांस्कृतिक विविधता भी दिखाई पड़ती है जिसका नियमन स्थानीय आवश्यकताओं द्वारा भी होता रहा होगा। इन क्षुद्राश्रमों में केवल बड़े उपकरणों का ही प्रयोग सीधे हाथ द्वारा किया जाता था छोटे उपकरण किसी अन्य उपकरण जिसमें डंडे अथवा मुठिया का प्रयोग होता था के सहायक अंगों के रूप में काम चाते थे। यूरोपीय मध्य पाषाणकालीन मनुष्यों को मानक स्वीकार करते हुए यह श्रनुमाल किया जा सकता है कि यहां भी इस काल के मनुष्य तीर-धनुष का प्रयोग करते थे। इनका सामान्य जीवन अपने पूर्वजों से अधिक भिन्न नहीं रहा होगा।

भारतीय प्रागैतिहासिक काल में, सर्वथा सुनिश्चित रूप में, आखेट एवं खाद्य संग्रहपरक अर्थव्यवस्था की अवस्था से पशुपालन तथा अन्नोत्पादनपरक अर्थ-व्यवस्था में संक्रमण के रष्टान्त नहीं मिलते। अधिक सम्भवना इस बात की है कि काफी लम्बे समय तक इन पृथक् अर्थव्यवस्थाओं से संबद्ध मानव समूहों का सहा-स्तित्व रहा होगा, साथ ही पूरे देश में अलग-अलग स्थानों पर किसी प्रकार की एकरूपता की आजा करना भी युक्तियुक्त नहीं होगा। यह भी श्रावश्यक नहीं है कि मृग्भाण्डों के निर्माण को ग्रनिवार्यतः लोगों के स्थायी बस्तियों में रहने अथवा, साद्य संग्रहपरक अवस्था के स्थान पर, अन्नोत्पादनपरक अवस्था में श्रा जाने के साथ सहसंबद्ध किया जाय। उदाहरण के लिए, बलुचिस्तान में क्वेटा के निकट किली गुल मुहम्मद में प्राथमिक चरण से स्थायी बस्ती की अवस्था मिलती है जिसमें लोग कच्ची ईंटों से बने मकानों में रहते थे, किन्तु उनमें मृग्भाण्डों के प्रचलन का कोई संकेत नहीं प्राप्त होता। यह स्पष्टतः मृग्भाण्ड-प्रयोग से

पूर्व की अवस्था का स्थायी निवसन है। इस सन्दर्भ में यह भी कह सकना कठिन है कि पशुओं का आखेट किया जाता था अथवा उनमें से कुछ पाले भी जाने लगे थे। छोटे पैमाने पर डंडे द्वारा हराई बनाकर किए जाने वाले अन्नोत्पादन का पुरातात्विक चिन्ह प्राप्त होने की आशा नहीं की जा सकती और यह सम्भव है कि क्षुद्राश्रमों का प्रयोग करने वाले कुछ मानव समूहों में अन्नोत्पादन की यह विधा प्रचलित रही हो। यह उल्लेखनीय है कि लंघनाज में मृण्माण्ड निर्माण से पूर्व के स्तर से ओखली और मूसल प्राप्त हुए हैं।

उत्तर पाषाणकाल में भी प्रारम्भिक अवस्था में आखेट तथा खाद्य संग्रह ही जीविका के मुख्य साधन रहे होंगे। किन्तु आखेट के लिए प्रमुख आवश्यक आयुधों में पर्याप्त विकास दिखाई पड़ता है। समुद्र तट पर रहने वाले उत्तर पाषाणकालीन मनुष्यों के विषय में, उनकी स्थिति तथा वर्तमान काल में तटीय प्रदेशों में रहने वाले लोगों में व्याप्त प्रचलन के आधार पर, यह कहा जा सकता है कि मछली पकड़ना उनकी जीविका का प्रमुख साधन था। अन्तःस्थलीय प्रदेशों में आखेट की प्रमुखता रही होगी। आलचिन ने सुझाया है कि उत्तर पाषाणकालीन मनुष्य वस्तुओं के विनिमय की प्रणाली से परिचित रहे होंगे और सम्भव है कि यह ज्ञान इसके पहले से रहा हो। उनका कहना है कि मध्यभारत तथा मैसूर से प्राप्त अपेक्षाकृत बड़े उपकरण निर्माण स्थल एकाधिक मानव समूहों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ दिखाई पड़ते हैं, और मध्य भारत की गुफाओं में बने चित्र संस्यक परिवारों समूहों के एक स्थान पर एकत्रित होने भी घोर संकेत करते हैं। चूंकि कई स्थानों पर उत्तर पाषाणकालीनता कालीन समूहों के भावास एक दूसरे के बहुत अधिक निकट स्थित मिलते हैं, घन यह सम्भावना पुरोत्प्रेक्षित लगती है कि भाचेतक समुदाय भत्तोत्पादक समुदायों के साथ इस प्रकार के वस्तु विसिय का सम्बन्ध रखते थे। बाज भी काली ओपन व्यतीत करने वाले शादिय समाज के लोग इलिया महावि मस्तुमों के बदले में निकटवर्ती गांवों से भोजन, वस्त्रमादि प्राप्त करते हैं।

पूरा पाषाण काल तथा ताम्र पाषाण काल



नवपाषाणकाल कई महत्पूर्ण विकासों की ओर संकेत करता है। नवपाषाण कालीन समाज छोटे-छोटे बयों में बता हुआ, बालेट की खोज में रत, विचरणशील समाज न होकर एक स्थान ६६ बसा हुआ, अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित समाज था। एब वह विविध पशुओं को पालना सीख गया था तथा उसका प्रकार कितना ही प्रारम्भिक क्यों व रहा हो उसे कृषि कर्म का ज्ञान हो चला था। बलूचिस्तान की नवपाषाणकालीन संस्कृतियों से सम्बद्ध सुष्माण्डों पर बनी आकृतियों से, तथा विविध स्थानों पर मिली पशुओं की हड्डियों से यह ज्ञात होता है कि उस समय कौन-कौन से पशु पाले जाते थे। गाय, बैल, भेड़, बकरी, सुभर तथा कुत्ता प्रमुख पालतू पशु थे।

बलूचिस्तान के मृष्माण्डों पर बने चित्रों, वहां से प्राप्त मृष्मूर्तियों तथा दक्षिण भारतीय गुहा चित्रों एवं मृष्मूर्तियों से भी पालतू पशुओं में कूल्हेवार बैल का प्राधान्य दिखाई पड़ता है। उन्हें हिरन का भी ज्ञान था। भैंस की प्राकृति भी अंकित मिलती है, किन्तु यह कह सकना कठिन है कि उसे पाजा जाता था अथवा उसका शिकार किया जाता था। पक्षियों का अंकन करने वाली सृष्मूर्तियां तथा उनकी हड्डियां भी प्राप्त हुई हैं। हल्लूर में ताम्राक्षीय काल के अन्तिम स्तर से घोड़ की हड्डी मिली है। प्राप्त साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि इन पशुओं का भोजन के लिए प्रयोग होता था। उल्लूर तथा कुपगल के भस्मचयों (ऐशमाउण्ड्स) से गौसारों के अस्तित्व का पता चलता है, जो विकसित तथा व्यापकस्तरीय पशु-पालन का संकेतक है। गौसारों का अस्तित्व बस्ती के अन्दर तथा बाहर दोनों मिलता है। यह सम्भवतः पशुओं के सामयिक स्थानान्तरण की ओर संकेत करता है जब कि लोग अपने पशुओं को निकटस्थ जंगलों के चरागाहों में ले जाते थे।

बलूचिस्तान में, हरप्पा-पूर्व के स्तर से प्राप्त अन्नविषयक ज्ञान अत्यल्प है। मुण्डीगाक के द्वितीय स्तर से गेहूं के एक प्रकार (फ्लब-व्होट) का चिन्ह मिला और इसी स्थान से भारतीय बेर का भी प्रमाण प्राप्त हुआ है। दक्षिण भारत से प्राप्त अवशेष विनशेषरूपेण उत्तर मैसूर में मिली नवपाषाणकालीन संस्कृतियों के पर-वर्ती स्तर-इस विषय में अधिक जानकारी प्रदान करते हैं। तेक्ककोटा तथा वाविम्पल्ली से मूग का भी अवशेष मिला है घोर हल्लूर से रागि (बाजरा का एक प्रकार) की प्राप्ति हुई है। तेक्कलकोटा तथा उत्तूर से खजूर की लकड़ी मिली है। नवदातोली के लोग गंध के दो प्रकारों के साथ मसूर, उर्द, मूग तथा मटर के प्रयोग से भी परिचित थे। यहीं के द्वितीय स्तर से चावल के प्रयोग का भी पता चलता है, यद्यपि इसका प्रयोग विरल प्रतीत होता है। अन्नोत्पादन की विधा के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। कहीं से भी हल के अस्तित्व का कोई भी प्रमाण नहीं मिला है। नवदातोली में बड़ी संख्या में प्राप्त हुए भारी वृत्ताकार प्रस्तरों के सम्बन्ध में सांकलिया का अनुमान है कि इसका उपयोग जमीन खोदने के लिए प्रयुक्त डंडियों पर भार डालने के लिए होता था, जैसा कि उड़ीसा के आदिवासियों में आज भी प्रचलित है।

निष्कर्ष, नव-पाषाणकालीन संस्कृतियों में पहाड़ियों पर तल-निर्माण का प्रबलन दिखाई पड़ता है, और आलचिन का विचार है कि इस प्रकार के तलों अथवा चबूतरों का प्रयोग कृषि-कर्म के लिए किया जाता था। नीलगिरी की बादगा जन-जाति जैसे कबीलो में इस प्रकार के क्षेत्रतलों का निर्माण आज भी किया जाता है। यह काल भारतीय सभ्यता एवं समाज के इतिहास में प्राथमिक चरण है। इसमें मृष्माण्ड-निर्माण कला, गृह-निर्माण तथा स्थायी बस्तियों का उद्भव,

पशु-पालन तथा कृषि-कर्म का ज्ञान सामाजिक एवं ग्रायिक दृष्टिकोण से प्रमुख सांस्कृतिक आयाम थे। सैधव संस्कृति के आगमन के साथ प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास की प्रारम्भिक अवस्था के विषय में हमारा ज्ञान अधिक प्रामा-णिक एवं निश्चित हो जाता है और इस प्रसंग में बलूचिस्तान, सिथ तथा पंजाब प्रदेश की ग्राम्य संस्कृतियों के योगदान की चर्चा पीछे की जा चुकी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1 विस्तार पूर्ण विवेचन के लिए द्र० एस० पी० गुप्त, बरियल कस्टम्स इन ऐन्शेन्ट इण्डिया द जर्नल आत्र व बिहार रिसर्च सोसायटी जि० 46, भाग 1-4, पृ० 84-1021
- 2 वही, पृ० 85-861
- 3 वही, पृ० 94-951
- 4 द वर्य आव इण्डियन सिविलाइजेशन, पृ० 256-257 ।
- 5 काणे पी० वी० हिस्ट्री आव धर्मशास्त्र जि० 1, भाग 1, जि० 2 पूना ।
- 6 कुन्हनराजा, सी० रेलिजन एण्ड फिलासफी आव द वेद, केम्ब्रिज, संस्कृत ड्रामा, आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन 19241
- 7 कुमारस्वामी, ए० के० द क्विन्टीसेंस आव द ऋग्वेद, बम्बई, 1964
- 8 कोसम्बी, डो० डी० द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन आव इण्डिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन, लन्दन, 1965
- 9 गार्डन, डी० एच० द प्रीहिस्टारिक बैकग्राउन्ड आव इण्डियन कल्चर, बम्बई, 1958
- 10 गुप्त, एस० पी० डिसपोजल आव द डेड एण्ड फिजिकल टाइप्स इन ऐन्शेन्ट इण्डिया, ओरियन्टल पब्लिशर्स, दिल्ली 19721
- 11 घुरये, जी० एस० सोशयल लाइफ इन ऐन्शेन्ट इण्डिया-ए स्टडी इन वात्स्यायन्स कामसूत्र, कलकत्ता 1954
- 12 घोषाल, यू० एन० द अग्रेरियन सिस्टम इन इण्डिया, कलकत्ता, 1930
- 13 चक्लदार, एच० सी० लेस्वलावाज द लेंद आंशियेन दाप्र ले तैक्स्त पालि ए संस्कृत, पांडिचेरी, 1957
- 14 चट्टोपाध्याय, डी० पी० हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, कलकत्ता, 1929